अपराधी

विरेन्द्र तिवारी

बस में बैठे हुए मुझे झपकी आ गई। सुबह 7 बजे का जगा था। सुबह-सुबह ही मैं दीपक को लेकर मैनपुर के लिये निकल पड़ा था। मेरी पदस्थापना हाल ही में सुधार गृह में हुई थी, और यहां आते ही यह बेगारी का काम मिल गया। 15 साल के दीपक की सज़ा समाप्त हो गई थी, पर उसे लेने कोई नहीं आया, तो न्यायालय के आदेशानुसार सुधार गृह से किसी को उसके घर तक छोड़ने जाना था। दीपक मैनपुर के आदिवासी क्षेत्र का रहने वाल था। कोई इतनी दूर जाने को राजी न था। सबसे कनिष्ठ होने के कारण यह अप्रिय काम मुझे दे दिया गया।

आंख खुली को एक छोटे से गांव में बस खड़ी थी। पास में एक ठेले पर केले बिक रहे थे। मुझे कुछ भूख सी लग रही थी सो मैने कुछ केले खरीद लिये। एक केला दीपक को देकर मैने हल्के-फुल्के अन्दाज मे बात करनी चाही - "सुधार गृह तुम्हे कैसा लगा?" दीपक ने मेरी ओर देखा पर बोला कुछ नहीं। मैने एक केला उसकी ओर बढ़ाया तो केला लेकर वह उसे चुपचाप कुतरने लगा। शायद उसे यकीन नहीं हो रहा था कि वो छूट गया है। मैने बात करने की कोशिश बंद कर दी और अखबार निकालकर पढ़ने लगा। बस चलती रही और दीपक खिड़की के बाहर के दृश्यों को निहारता रहा। कुछ देर बाद मैने फिर प्रयास किया और अपना प्रश्न दोहरा दिया। "अच्छा", उसने संक्षिप्त का उत्तर दिया और फिर खामोश हो गया। शाम लगभग चार बजे हम मैनपुर पहुँच गये। बस स्टैंड से हम पैदल ही दीपक के घर की ओर चल पड़े। घर के पास पहुंच कर दीपक की चाल तेज़ हो गयी। शाम के लगभग पाँच बजे थे और मुझे भी वापस जाने की जल्दी थी। दीपक को देखकर उसकी मां उससे लिपटकर रोने लगी। वह उसे गले लगाकर पुचकार रही थी। रोते-रोते हंस रही थी और हंसते हुए रो रही थी। दीपक ने

बड़ी मुश्किल से माँ को अलग किया और मुझे लेकर घर के अंदर आ गया। घर क्या एक छोटी से झोपड़ी थी कोने मे एक लकड़ी की खटिया पड़ी थी। एक ओर चुल्हे के साथ कुछ प्लास्टिक के डब्बे रखे थे। मैने इधर-उधर नजर घुमाई कि शायद कोई कुर्सी या स्टूल नजर आ जाये जिसपर बैठकर मैं सुपुर्दगी की कार्यवाही कर सकूं। दीपक की माँ शायद समझ गई। उसने अपनी फटी धोती के पल्लू से खाट की धूल झाड़कर मुझे उसपर बैठने का इशारा किया । मैं बंद कोठरी में पसीना-पसीना हो रहा था, सो अपना कोट उतार कर मैने खाट पर रखा और उसी खाट पर बैठ गया। दीपक मेरे लिये प्लास्टिक के एक डब्बे से एल्यूमिनियम के गिलास में पानी भर लाया। मैने देखा पानी पर कुछ तैर रहा था। मैने उससे गिलास लेकर ज़मीन पर रख दिया और दीपक की माँ से कहा कि गवाही के लिये दो पड़ोसियों को बुला लाये। दीपक की मां गवाहों को लेने गई तो मैंने अपना कर्तव्य पालन शुरू किया और भविष्य में कभी चोरी न करने की समझाइश मैं दीपक को देने लगा। मैं उसे समझा ही रहा था कि उसकी माँ दो संभ्रांत महिलाओं को लेकर आ गई। मैने उन्हें बताया कि उन्हें सुपुर्दगी के कागज पर गवाह के रूप में हस्ताक्षर करना है। मैं आगे कुछ कहता इसके पहले ही दोनो ने दीपक पर आरोपों और लानतों की बारिश कर दी - "इसकी गरीब माँ को देखकर हमने इसे अपने यहाँ काम पर रखा और यह हमारे ही घरों में चोरी करने लगा। दिनभर आवारा घुमना, नशा करना, यही सब इसका काम है। कौन इसकी जिम्मेदारी लेगा?" मैने उन्हे समझाया कि उन्हें जिम्मेदारी नहीं लेना है बस सुपुर्दगी की गवाही पर हस्ताक्षर करना है पर वे न समझीं और दीपक को कोसती रहीं। दीपक कुछ देर कोध्र और विस्मय से उन्हें देखता रहा फिर बोला - "मैने चोरी नहीं की थी। आपका हार तो आपके भैय्या जी ही ले गये थे और आपने मुझे पकड़वा दिया।"

दीपक की बात सुनकर वे दोनो और गुस्सा हो गईं। तब तक आस पास के कुछ और लोग भी आ गये। उन्होने भी उन दोनो की हाँ में हाँ मिलाना शुरू कर दिया। तब तक मैं परेशान हो चुका था। वापसी की बस का समय भी हो रहा था। "क्या कोई भी गवाही पर हस्ताक्षर करने को तैयार है", मैने पूछा। दीपक की मां फिर रोने लगी। रोते हुए उसने एक महिला के पैर पकड़ लिए और कहा - "में बूता पानी करके आपका सब चुका दूंगी, मेरे बेटे को बचा लो मालकिन" वह महिला बोली - "ठीक है तू कहती है तो तेरे लिये दस्तखत कर देती हूं। बाद में भूल न जाना।" मैने चैन की सांस ली और कागज़ उसकी ओर बढ़ा दिया। दीपक पूरे समय उसे खा जाने वाली नज़रों से देखता रहा। ऐसा लग रहा था जैसे वह उसे अभी मारने लगेगा। "एक अपराधी का क्या भरोसा, कहीं यहां नया सीन शुरू हो गया तो मेरा काम ही लग जायेगा", मैने मन मे सोचा। खैर दीपक चुप ही रहा। कागज़ पर दस्तखत होते ही मैं वहां से निकला और जल्दी से बस स्टेंड पहुंचकर रायपुर जाने वाली बस में बैठ गया। शाम के साढ़े छः हो रहे थे। ठण्ड लगनी शुरू हो गयी। अचानक मुझे अपने कोट का ध्यान आया। "ओह नो", मैने मन मे सोचा "मै अपना कोट जल्दबाजी में दीपक के घर ही छोड़ आया हूं।" वापस लेने जाने का समय न था। बस छूटने वाली थी। महंगा कोट छूटने का तो गम था ही पर उससे ज्यादा ठंडी रात में बिना कोट के सफर करने का भय था। मैने ठण्ड से बचने के लिये खिड़की बंद की और दुबक गया। अचानक बस में कुछ हलचल सी हुई। दीपक मेरा कोट लिये दौड़ा आ रहा था। हांफते हुए वह मेरे पास आया और बिना कुछ बोले कोट मेरी ओर बढ़ा दिया। मैने कोट लिया पर उसे धन्यवाद देता इसके पहले ही वह मुड़ा और चुपचाप बस से उतर गया। बस धीरे से चल पड़ी और मैं अपराधी की तरह बैठा रहा।

***